नियमसार, २०५ कलश है। २०४ हो गये हैं।

केचिदद्वैतमार्गस्थाः केचिद् द्वैतपथे स्थिताः।
द्वैताद्वैतविनिर्मुक्तमार्गे वर्तामहे वयम्।।२०५।।

श्लोकार्थ : कोई जीव अद्वैतमार्ग में स्थित हैं... (अर्थात् कि) विकल्प। वेदान्त अद्वैतमार्ग है। परन्तु यहाँ तो अद्वैत अर्थात् विकल्प। मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ आदि ऐसे अद्वैत के विकल्प में कोई रहता है, वह भी बन्ध का कारण है। अद्वैत। **कोई जीव अद्वैतमार्ग में स्थित हैं और कोई जीव द्वैतमार्ग में स्थित हैं;...** कोई गुण-गुणी के भेद इत्यादि में रहते हैं। आहाहा! **द्वैत और अद्वैत से विमुक्त मार्ग में...** मैं तो द्वैत और अद्वैत के विकल्प से मुक्त हूँ। आहाहा! अखण्ड आनन्द पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अभेद अखण्ड है, उसमें विकल्प का अवकाश नहीं है। मैं ऐसा हूँ या वैसा हूँ, ऐसे विकल्प को जहाँ अवकाश नहीं है। ऐसा जो भगवान आत्मा का स्वरूप है, ऐसे स्वरूप को मैं तो भजता हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अद्वैत से विमुक्त मार्ग में (अर्थात् जिसमें द्वैत या अद्वैत के विकल्प नहीं हैं, ऐसे मार्ग में) हम वर्तते हैं। आहाहा! कहाँ साधुपद (और) कहाँ साधुपद मानते हैं। आहाहा! यहाँ तो चैतन्य अखण्ड स्वरूप नित्यानन्द प्रभु, मैं एकरूप हूँ, ऐसा भी विकल्प नहीं और मैं गुण-गुणी भेदरूप हूँ, ऐसा भी विकल्प नहीं। ऐसे विकल्प से रहित मैं हूँ। वह आत्मा। आहाहा! **हम वर्तते हैं।** उसमें हम वर्तते हैं। ऐसा कहा। है न? आहाहा! यहाँ तो अभी बाहर का विवाद। व्यवहार करना, यह करो... यह करो... यह करो... यहाँ तो कहते हैं कि द्वैत और अद्वैत के दो विकल्प उठें, वह भी मैं नहीं। आहाहा! वह राग है।

समयसार में वहाँ कहा न? कि मैं ज्ञायक हूँ, अभेद हूँ—ऐसा जो विकल्प (वहाँ तक आया), उससे क्या हुआ? वहाँ तक आया, उससे क्या? तुझे क्या लाभ है? आहाहा! विकल्प से रहित चैतन्यमूर्ति नित्यानन्द अखण्ड आनन्द प्रभु, सच्चिदानन्दस्वरूप, ध्रुवस्वरूप, नित्यस्वरूप, अभेदस्वरूप, एकस्वरूप, सामान्यस्वरूप, वह मैं हूँ। आहाहा! पर्याय में उस सामान्य का अनुभव करना, वह धर्म है। सामान्य का अनुभव तो न हो, परन्तु सामान्य की ओर का लक्ष्य जाने पर निर्मल पर्याय प्रगट हो, उसका वेदन हो, उसका नाम धर्म है।

आहाहा! बहुत कठिन काम। कहाँ बाहर में माने और कहाँ (मार्ग है)। यहाँ तो कहते हैं द्वैत-अद्वैत में भी मैं नहीं हूँ। ऐसे विकल्प से भी मैं तो रहित हूँ। आहाहा!

(जिसमें द्वैत या अद्वैत के विकल्प नहीं हैं, ऐसे मार्ग में) हम वर्तते हैं। आहाहा! ऐसे मार्ग में हम वर्तते हैं। लिखते समय विकल्प है, परन्तु हम तो विकल्परहित (वस्तु हैं), उसमें वर्तते हैं, ऐसा कहते हैं। कलश / टीका लिखते समय विकल्प तो हो। उसके बिना, विकल्प के बिना पर के ऊपर लक्ष्य नहीं जाता परन्तु कहते हैं कि विकल्प हो परन्तु मैं उसमें नहीं वर्तता। मैं तो विकल्परहित निर्मलानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य आनन्दघन में मैं तो वर्तता हूँ। यह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! ऐसी कठिन बात है। एकान्त लगे। द्वैत-अद्वैत का विकल्प भी नहीं। आहाहा! वस्तु है न? वस्तु है, वह पर की कोई अपेक्षा नहीं रखती। उसे राग के विकल्प की अपेक्षा नहीं है, वह तो निर्विकल्प चीज़ है। अखण्ड परमानन्द मूर्ति एकरूप विराजमान आत्मा है। आहाहा! उसका अनुभव करना, इसका नाम धर्म है, इसका नाम धर्म है। लो! आहाहा! २०५ (श्लोक पूरा हुआ)।

श्लोक-२०६

(अनुष्टुप्)

काङ्क्षन्त्यद्वैतमन्येऽपि द्वैतं काङ्क्षन्ति चापरे।
द्वैताद्वैत-विनिर्मुक्तमात्मान-मभिनौम्यहम् ।।२०६।।

(वीरछन्द)

इच्छा करते है अद्वैत की कोई द्वैत को ही चाहें।
द्वैत-अद्वैत विमुक्त निजातम को मैं नित प्रति करूँ नमन॥२०६॥

श्लोकार्थ : कोई जीव अद्वैत की इच्छा करते हैं और अन्य कोई जीव द्वैत की इच्छा करते हैं; मैं द्वैत और अद्वैत से विमुक्त आत्मा को नमन करता हूँ॥२०६॥

श्लोक- २०६ पर प्रवचन

२०६।

काङ्क्षन्त्यद्वैतमन्येऽपि द्वैतं काङ्क्षन्ति चापरे।
द्वैताद्वैत-विनिर्मुक्तमात्मान-मभिनौम्यहम् ।।२०६।।

श्लोकार्थ : कोई जीव अद्वैत की इच्छा करते हैं... मैं एक ही हूँ, बस; दूसरा कुछ नहीं, ऐसे अद्वैत की इच्छा करते हैं। **और अन्य कोई जीव द्वैत की इच्छा करते हैं;...** दो— गुण और गुणी भेद या द्रव्य और पर्याय दो; द्रव्य त्रिकाली और पर्याय वर्तमान, इन दो में लक्ष्य करना, वह भी द्वैत है। आहाहा! अब ऐसी धर्म की पद्धति। आहाहा! **कोई जीव अद्वैत की इच्छा करते हैं और अन्य कोई जीव द्वैत की इच्छा करते हैं;...** द्रव्य और पर्याय की इच्छा करते हैं, कोई अद्वैत अकेले द्रव्य की इच्छा करते हैं परन्तु इच्छा करते हैं, वह वस्तु बराबर नहीं है। आहाहा! ज्ञानी को राग आता है। यह कहा न? द्वैत-अद्वैत का राग आता है तो भी उसमें मेरा वर्तन नहीं है। मेरा वर्तन तो अन्तरस्वरूप में है। वह मेरी चीज़ है। आहाहा!

आत्मधर्म पढ़कर आज किसी का पत्र आया है। दिल्ली से कोई अम्बाशंकर या ऐसा कुछ है। आत्मधर्म पढ़कर बहुत प्रसन्नता बतायी है। बहुत प्रसन्नता। ओहोहो! यह वस्तु! वस्तु जो विचार में चढ़े और जो पढ़कर तुलना करे तो उसे खबर पड़े, परन्तु पढ़कर कुछ हो गया, ऐसा का ऐसा पढ़कर रख दे (तो कुछ नहीं होता)। तुलना करे कि यह वेदान्त कहता है, ऐसा यह नहीं है। अद्वैत को यहाँ कहे, वह वेदान्त का अद्वैत नहीं है। वेदान्त का अद्वैत तो सर्वव्यापक एक आत्मा है। ऐसा नहीं है। यहाँ अद्वैत अर्थात् आत्मा एकरूप मैं हूँ, यह अद्वैत; और द्रव्य तथा पर्याय दो रूप मैं, यह द्वैत। दो से रहित मैं तो आत्मा का ध्यान करता हूँ। आहाहा! ऐसा मार्ग है। इसका नाम सामायिक है, इसका नाम समाधि है।

समाधि अधिकार चलता है न? आहाहा! जितना विकल्प उठे, वृत्ति उठे। मैं शुद्ध हूँ, चैतन्य हूँ—यह वृत्ति, वह असमाधि अर्थात् दुःख है। ऐसे तो श्वेताम्बर में लोगस्स में आता है '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु**' परन्तु अर्थ किसे करना है? पहाड़ा पढ़कर पूरा करके चले

जाएँ। वापस काम में लग जाएँ '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु**' ऐसा लोगस्स में शब्द है। लोगस्स में है। '**समाहिवरमुत्तमं दिंतु**' समाधि परन्तु वर अर्थात् उत्तम और ऊँची दो। वह यह समाधि। आहाहा! नित्यानन्द एक वस्तु है न? और उस नित्य वस्तु को कोई अपेक्षा है नहीं। वह तो अनादि का सहज स्वभाव है। उसमें पर्याय और द्रव्य दो मिले तो मिल जाए, ऐसा भी नहीं है। उसमें से तो पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, द्रव्य का अद्वैत का भी विकल्प छोड़कर अन्तर में जाए, तब स्वरूप की प्राप्ति होती है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। २०६ (श्लोक पूरा हुआ।)

श्लोक-२०७

(अनुष्टुप्)

अहमात्मा सुखाकाङ्क्षी स्वात्मानमजमच्युतम्।
आत्मनैवात्मनि स्थित्वा भावयामि मुहुर्मुहुः ।।२०७।।

(वीरछन्द)

अहो अजन्मा अविनाशी निज आतम को आतम द्वारा।
आतम में स्थित रहकर मैं सुख वाञ्छक पुनि-पुनि भाता ॥२०७॥

श्लोकार्थ : मैं—सुख की इच्छा रखनेवाला आत्मा—अजन्म और अविनाशी ऐसे निज आत्मा को आत्मा द्वारा ही आत्मा में स्थित रहकर बारम्बार भाता हूँ॥२०७॥

श्लोक- २०७ पर प्रवचन

२०७।

अहमात्मा सुखाकाङ्क्षी स्वात्मानमजमच्युतम्।
आत्मनैवात्मनि स्थित्वा भावयामि मुहुर्मुहुः ।।२०७।।

श्लोकार्थ : मैं—सुख की इच्छा रखनेवाला आत्मा—मैं अतीन्द्रिय आनन्द की

इच्छा करनेवाला। आहाहा! आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण भरा है। उस अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप ही आत्मा है। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप **मैं—सुख की इच्छा रखनेवाला...** उस अतीन्द्रिय आनन्द की अभिलाषा करनेवाला। **आत्मा—अजन्म और अविनाशी...** उसे कोई जन्म नहीं और जन्म नहीं तो मृत्यु और विनाश भी नहीं। आहाहा! मक्खन है। अकेली मक्खन की बात है। क्योंकि यह गाथा सम्प्रदाय में बहुत चलती है। **जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा। तस्स सामाइगं ठाइ..** यह शब्द चलता है। स्थानकवासी में भी चलता है, मन्दिरमार्गी में भी यह गाथा चलती है। परन्तु इस गाथा का अर्थ क्या है, उसे नहीं समझते। सामायिक करते हैं, उसे सामायिक कहते हैं। **तस्स सामाइगं ठाइ** अखण्डानन्द प्रभु, नित्य अविनाशी, सहज स्वरूप अन-उत्पत्ति और विनाशरहित तत्त्व की मैं भावना करता हूँ। आहाहा! उसमें मैं रहना चाहता हूँ।

विकल्प और अविकल्प दोनों दुःख और राग हैं। उससे छूटकर... आहाहा! मैं तो ऐसे **निज आत्मा को...** वापस (विकल्प) छोड़कर पर आत्मा और वीतराग, वह नहीं। आहाहा! अब ऐसी बातें हैं। कितने ही जैन में जन्मे हो तो सुना भी न हो। ऐसी की ऐसी रूढ़ियाँ करके जिन्दगी निकाली। आहाहा! अन्दर भगवान चैतन्यमूर्ति अरूपी परन्तु वस्तु है न? पदार्थ है न? अस्ति / सत्ता है न? मौजूदगी पदार्थ चीज़ है। वह महा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ है। उसकी मैं भावना रखता हूँ।

मैं—सुख की इच्छा रखनेवाला आत्मा—अजन्म और अविनाशी ऐसे निज आत्मा को आत्मा द्वारा... वह तो अजन्म है। आत्मा को जन्म नहीं। आत्मा में मृत्यु-नाशपना नहीं। वह तो जन्म-मृत्युरहित प्रभु अन्दर है। आहाहा! वह आत्मा तो त्रिकाल निरावरण अखण्डानन्द है। जिसमें पर्याय का भी जहाँ स्पर्श नहीं। आहाहा! ऐसी जो चीज़ है, उसे मैं **निज आत्मा को आत्मा द्वारा ही...** भाषा है। 'ही' शब्द है। दया, दान और राग के विकल्प से यह वस्तु मिलेगी, ऐसा नहीं है। **आत्मा द्वारा ही...** एकान्त किया। आत्मा में जो आनन्द और ज्ञान भरे हैं, उस आनन्द के ज्ञान द्वारा ही प्राप्त होता है। उसमें जो स्वभाव है, उस स्वभाव से प्राप्त होता है। उसमें पुण्य-पाप आदि परवस्तु नहीं है। उससे प्राप्त नहीं होती, भगवान से भी (वह चीज़) नहीं प्राप्त होती। आहाहा! तीर्थंकर और तीर्थंकर की वाणी, उससे भी प्राप्त होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वस्तु ऐसी है। अखण्ड आत्मा...

मुमुक्षु : दो बात में एक तरफ पक्ष से निषेध आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निषेध आता है। आ जाता है। उसका यह अर्थात् वह नहीं। स्वभाव की ओर झुकना तो विभाव की ओर से विमुख होना, यह आ जाता है। अरे! प्रभु! मार्ग कोई अलग रह गया। और लोगों के झुकाव में पूरा सम्प्रदाय का झुकाव दूसरा हो गया।

चैतन्यस्वभाव अनन्त-अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त-अनन्त अविकारी अनन्त गुणों का समुदाय प्रभु आत्मा, वह अनादि का सहज एक ही रूप रहा है। अनादि का द्रव्यस्वभाव एक ही रूप रहा है। आहाहा! उसे... आहाहा! **आत्मा को आत्मा द्वारा ही...** व्यवहार द्वारा, राग द्वारा, विकल्प द्वारा नहीं। आहाहा! कठिन लगे, बापू! वीतरागमार्ग... वीतरागमार्ग वीतरागस्वरूप आत्मा है। आत्मा वीतरागस्वरूप ही है। वह वीतरागस्वभाव से प्राप्त होता है। राग से वह प्राप्त नहीं होता। आहाहा!

इस **आत्मा को आत्मा द्वारा ही...** स्वभाव द्वारा ही। आहाहा! आत्मा को स्वभाव द्वारा ही। शुद्धस्वभाव, पुण्य और पाप के भाव से रहित ऐसा जो शुद्धस्वभाव, उसके द्वारा ही **आत्मा में स्थित रहकर...** आत्मा में स्थित रहकर, ऐसे आत्मा में स्थित रहकर; अस्थित जो विकल्प है, उसे छोड़कर... आहाहा! **बारम्बार भाता हूँ।** ऐसे आत्मा को बारम्बार भाता हूँ। विकल्प आता है, छठवें-सातवें (गुणस्थान) में मुनि हैं। परन्तु मैं बारम्बार पूर्णानन्द के नाथ को भाता हूँ। छठवें गुणस्थान में विकल्प उठे, उसका भी मुझे आदर नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें, लो! यह तो बाहर से कुछ समझे बिना सामायिक करे, प्रोषध करे, प्रतिक्रमण, चौविहार-रात्रि में आहार नहीं लेना, छह परबी कन्दमूल न खाना, छह परबी ब्रह्मचर्य पालन करना। अरे! यह सब क्रियाएँ, बापू! यह सब राग की क्रिया है, आत्मा की यह नहीं। आहाहा! आत्मा की अलौकिक क्रिया यह है।

आत्मा द्वारा ही... निमित्त द्वारा, राग द्वारा भी नहीं। ऐसा आया न? निमित्त द्वारा भी नहीं। वीतराग और वीतराग की वाणी द्वारा भी नहीं। आहाहा! **आत्मा में स्थित रहकर...** आत्मा में आत्मा से स्थित रहकर... आहाहा! **बारम्बार...** शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान की मैं भावना करता हूँ। उसकी मैं भावना करता हूँ। आहाहा! यह पंचम काल के मुनि! यह कहीं चौथा काल नहीं है। यह तो पंचम काल के मुनि हैं, एक हजार वर्ष पहले हुए हैं। कुन्दकुन्दाचार्य भी पंचम काल के मुनि हैं। दो हजार वर्ष (पहले हुए)। यह दोनों मुनियों

का एक ही पुकार है। पंचम काल हो या चौथा काल हो, यह कहीं काल-फाल उसमें है नहीं।

अखण्ड आनन्दकन्द प्रभु, अरूपी परन्तु अनन्त गुण का घन पिण्ड, यह उसके स्वभाव द्वारा प्राप्त होता है, ऐसा है। उसके स्वभाव द्वारा प्राप्त होनेवाला है। उससे विरुद्ध विभाव आदि निमित्त से प्राप्त होनेवाला नहीं। आहाहा! तब यह सब पढ़ना और पाठशालाएँ खोलना और पढ़ाना, शिक्षण शिविर लगाना, उसके लिये तो सब करते हैं न मकान-बकान? शिक्षण शिविर में अधिक लोग आते हैं, समाते नहीं तो उनके लिये बनाते हैं। आहाहा! पहले सुन तो सही कि क्या चीज़ है। उसे सुने, लोग लक्ष्य में तो ले। तेरे ज्ञान पर तो बात को धार! आहाहा! ज्ञान में भी धारता नहीं तो अन्तर में किस प्रकार ले जाएगा? आहाहा! जिसके ज्ञान में दाद मिलती नहीं, ऐसे अभेद की, विकल्परहित आत्मतत्त्व की, ज्ञान के ज्ञानपने में भी जिसका नाद नहीं आता, दाद नहीं मिलती, वह निर्विकल्प होकर अन्दर कैसे जा सकेगा? आहाहा! बात ऐसी है।

बारम्बार भाता हूँ। भाषा है न? मैं तो बारम्बार आत्मा में जाता हूँ। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु है, वहाँ मैं बारम्बार जाता हूँ। आहाहा! पर्याय को वहाँ ले जाता हूँ, ऐसा (कहना है)। वह पर्याय जो बहिर्मुख है, उसे अन्तर्मुख में ले जाता हूँ। आहाहा! उसका नाम आत्मा का ध्यान, उसका नाम आत्मा की सामायिक, उसका नाम आत्मा का प्रायश्चित्त और प्रत्याख्यान। प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त, प्रतिक्रमण... आहाहा! सब यह दशा है, उसके सब नाम लिये हैं। यह २०७ (श्लोक पूरा हुआ।)

श्लोक-२०८

(शिखरिणी)

विकल्पोपन्यासैरलमलममीभिर्भवकरैः,
अखण्डानन्दात्मा निखिलनयराशेरविषयः।
अयं द्वैताद्वैतो न भवति ततः कश्चिदचिरात्,
तमेकं वन्देऽहं भवभयविनाशाय सततम्।।२०८।।

(वीरछन्द)

भव-उत्पादक भेद कथन से बस होओ अब बस हो रे!
अहो अखण्डानन्द आत्मा नयसमूह का अविषय है॥
इसीलिए यह आतम द्वैत-अद्वैत विकल्पों से है दूर।
अल्पकाल में भवभय क्षय के लिए उसे मैं नमन करूँ॥२०८॥

श्लोकार्थ : भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प-कथनों से बस होओ, बस होओ। जो अखण्डानन्दस्वरूप है वह (यह आत्मा) समस्त नयराशि का अविषय है; इसलिए यह कोई (अवर्णनीय) आत्मा द्वैत या अद्वैतरूप नहीं है (अर्थात् द्वैत-अद्वैत के विकल्पों से पर है)। उसे एक को मैं अल्प काल में भवभय का नाश करने के लिये सतत वन्दन करता हूँ॥२०८॥

श्लोक - २०८ पर प्रवचन

२०८

विकल्पोपन्यासैरलमलममीभिर्भवकरैः,
अखण्डानन्दात्मा निखिलनयराशेरविषयः।
अयं द्वैताद्वैतो न भवति ततः कश्चिदचिरात्,
तमेकं वन्देऽहं भवभयविनाशाय सततम्।।२०८।।

श्लोकार्थ : भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प-कथनों से बस होओ,...

आहाहा! यह शुभविकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति वह भी शुभ है, वह विकल्प है। वह भवभय **भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प-..** आहाहा! इस शुभभाव से तो संसार भटकने का भव मिलेगा। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, कुछ शुभक्रिया करे वह धर्म, बस! दुकान का धन्धा छोड़कर घण्टे-दो घण्टे बैठे। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं.. (करे इसलिए) हो गया उसे धर्म। भाई! धर्म कोई अलौकिक चीज़ है। अभी धर्म सुनने को भी नहीं मिला।

यहाँ कहते हैं कि **भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प-..** यह सब विकल्प भव के करनेवाले हैं। आहाहा! शुभ और अशुभ विकल्प भव के करनेवाले हैं। आहाहा! उनके **कथनों से बस होओ, बस होओ।** अलम्-ऐसा दो बार पाठ है। दो बार पाठ है न अलम्! अलम्-अलम्। अलम् क्या कहते हैं? अनादि काल से शुभ-अशुभ विकल्प तो किये, उसमें से तो भव मिले। अब अलम्, **बस होओ, बस होओ।** ऐसा कहते हैं। आहाहा! **अलम् अलम्।** अब यह बस होओ। इस विकल्प से संसार और भव मिलते थे। भले शुभभाव हो परन्तु वह जहर है, जहर। आहाहा! उससे प्रकृति बँधती है, वह भी विष का वृक्ष कहा है - जहर का वृक्ष कहा है।

मुमुक्षु : काला नाग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और शुभ को काला नाग कहा। वह तो इससे जो प्रकृति बँधी, प्रकृति जो बँधी, उसे विष का वृक्ष कहा है। विषकुम्भ नहीं, विषवृक्ष। १४८ प्रकृति। १४८ प्रकृति को विषवृक्ष कहा है। शुभभाव को विषकुम्भ कहा है परन्तु शुभभाव का फल प्रकृति बँधती है, वह चाहे तो तीर्थंकरप्रकृति बँधे तो भी विषवृक्ष-जहर का वृक्ष है, ऐसा कहा है। आहाहा! कर्म की १४८ प्रकृति है। आठ कर्म हैं, आठ कर्म के अन्तर्भेद १४८। १४८ प्रकृति को... आहाहा! जहर का वृक्ष कहा है। अमृत का सागर तो भगवान है, तब उससे विरुद्ध भाव और उसका फल सब जहर है। आहाहा! १४८ प्रकृति को विषवृक्ष कहा न? विषवृक्ष कहा। भाव को विषकुम्भ कहा, परन्तु शुभ-अशुभभाव जो है, उसे जहर कहा है। परन्तु निमित्त होकर उससे जो प्रकृति बँधे, वह निमित्त है, प्रकृति के काल में प्रकृति बँधती है। वह प्रकृति स्वयं विष का वृक्ष है। वह जहर का वृक्ष है। उसमें से जहर पकेगा। आहाहा! सुनना कठिन पड़े। सम्प्रदाय के साथ तो बड़ा विवाद उठा है। विवाद

उठावे बेचारे। पहले शुरुआत में विरोध बहुत किया था। छूटे थे तब। स्थानकवासी ने विरोध किया, श्वेताम्बरों ने भी विरोध किया, दिगम्बरों ने भी विरोध किया। तीनों ने विरोध किया। अब रुका है।

मुमुक्षु : विरोध विरोध में रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब क्या विरोध करें। होगा, कोई न आवे, भले वह कुछ नहीं। आवे कोई बोले, विरोध करे, लिखे। 'करुणादीप' एक पुस्तक (पत्रिका) आती है न? मासिक। उसमें बहुत विरोध लिखते हैं। शुभ से धर्म नहीं मानते, ऐसा है, एकान्त है, अमुक है, अमुक है। अरे! प्रभु! तेरे हित की बात है न, नाथ! तू कैसे प्रगट हो और तू कैसे प्रसिद्ध हो, उसकी बात है। उसकी अनादि से अप्रसिद्धि है। आहाहा! अनादि से पुण्य और पाप की प्रसिद्धि है और उनके फल प्रकृति की प्रसिद्धि और उसके फल के संयोग की प्रसिद्धि है। यह संयोग बाहर के धूल पाँच-पच्चीस लाख मिलना या... शुभभाव वह जहर है। प्रकृति विषवृक्ष है और यह संयोग मिलते हैं, वह तो बाहर की चीज़ है। आहाहा! उनमें तीनों में आत्मा कहाँ आया कहीं? आहाहा!

भव के करनेवाले... आहाहा! विकल्प से भव के करनेवाले हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान का स्मरण, पंच परमेष्ठी का स्मरण शुभभाव है, वे सब भव के कारण हैं। आहाहा! यह सुना था वहाँ स्थानकवासी में? आहाहा! भाई! मार्ग बहुत अलग, बापू! आहाहा! विकल्प से हटकर निर्विकल्प में जाने की बात ही कोई अलग है और इसके बिना भव का अभाव तीन काल में नहीं होता। तीन काल में भव का अभाव नहीं होता। आहाहा! इसलिए कहा न? **भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प...** आहाहा! चाहे तो शुभ विकल्प हो—दया, दान, व्रत, भक्ति, वह भव का कारण है। उसमें से भव मिलेगा और भव है, वह दुर्गति है। आत्मा के हिसाब से चार गति, वह दुर्गति है। आहाहा!

पंचास्तिकाय के दूसरे श्लोक में नहीं आया? चारों ही गतियाँ दुःखरूप हैं। चारों ही गति संसार भटकने की हैं। पंचास्तिकाय में आता है। आहाहा! मनुष्यगति मिले, इसलिए मुझे कल्याण होगा, मनुष्यगति में ही केवलज्ञान होता है, इसलिए मनुष्यगति मिले, तो यह कहते हैं, नहीं। मनुष्यगति से तो नहीं, परन्तु विकल्प आवे कि मुझे यह मनुष्यगति है, इसलिए (कल्याण होगा), इस विकल्प से भी नहीं। आहाहा!

भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प-कथनों से बस होओ, बस होओ। पंच महाव्रत पालो, यह करो, व्रत पालो, यह बात अब बस रखो। आहाहा! यह सब भव के करनेवाले हैं। आहाहा! अरे रे! सत्य बात सुनने को मिले नहीं, यह प्रथा ही टूट गयी थी, इसलिए कठिन लगता है। प्रथा नयी आयी इसलिए। आहाहा! शुभविकल्प है, जिस भाव से तीर्थंकर (प्रकृति) बँधती है, वह भाव भी भव का कारण है। आहाहा! क्योंकि वह प्रकृति बँधती है, तब उसका फल भव मिलेगा, भव मिलेगा। आहाहा! इसलिए यहाँ कहते हैं कि **भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प...** आहाहा! फिर चाहे तो स्वर्ग का भव हो या तीर्थंकरप्रकृति का भव हो, परन्तु प्रकृति पड़ी है, उसका फल तो भव है। आहाहा!

यह पालीताणा (में) पाँच पाण्डव ध्यान में थे। पाँच पाण्डव महायोद्धा। भीम, अर्जुन, धर्मराजा, सहदेव और नकुल, पाँच। ध्यान में सुना कि नेमिनाथ भगवान मोक्ष पधारे हैं। ऐसा सुना और दर्शन करने जाते थे। सुना कि भगवान मोक्ष पधारे, इसलिए ऊपर चढ़ गये। शत्रुंजय। ध्यान में-आनन्द में अन्दर मस्त! उसमें दुर्योधन का भानेज ने आकर लोहे के धधकते गहने बनाये। आहाहा! वे धधकते गहने हाथ में पहनाये, पैर में पहनाये, सिर पर मुकुट पहनाया। लो, यह तुम्हारे राज्य चाहिए था, हमारे दुर्योधन के सामने। लो यह राज। आहाहा! उन पाँचों पाण्डवों के गले में, सिर में, हाथ में और पैर में, लोहे के धधकते (गहने पहनाये)। सहदेव और नकुल, दो भाईयों को जरा विकल्प आया, अरे! ये भाई हैं और स्वयं को भी धधकते लोहे के गहने पहनाये हैं। भाई को कैसे होगा? इतना एक शुभ विकल्प आया, वहाँ आयुष्य बँध गया। सर्वार्थसिद्धि का भव। तैंतीस सागर का आयुष्य बँध गया। विकल्प में तो भव है। आहाहा! तीन तो वहाँ मोक्ष पधारे। धर्मराजा, भीम और अर्जुन ये तो ध्यान में आनन्द में केवल (ज्ञान) प्राप्त करके मोक्ष पधारे। दो जनों को, छोटे भाईयों को ऐसा विकल्प आया। स्वयं को लोहे के पहनाये थे, परन्तु बड़े भाई हैं, उन्हें ऐसी अग्नि में कैसे होता होगा? आहाहा! वे तो ध्यान में, आनन्द में थे, यह परीषह है या नहीं, इसकी भी खबर नहीं थी। आहाहा! यह तो विकल्प उठे तो जानने में आवे। बाकी निर्विकल्प आनन्द में तो वह परीषह स्पर्श भी नहीं करता। तीन तो मोक्ष पधारे, दो जनों को एक इतना विकल्प आ गया, वहाँ तैंतीस सागर का सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य बँध गया। तैंतीस सागर किसे कहते हैं! एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम और एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष। आहाहा!

पाँचों ही भाई साधु थे। उसका एक विकल्प आया कि अरे! उन्हें कैसा होता होगा? अग्नि का सिर पर पहनाया, लोहे का धकधकते गहने पहनाये। आहाहा! अभी तो देव में हैं। वे तीन मोक्ष पधारे। तैंतीस सागर वहाँ रहेगें। वहाँ से वापस मनुष्यभव होगा, वहाँ भी कितना ही काल रहने के बाद मोक्ष जाएँगे। आहाहा! एक विकल्प इतना आया, उसमें इतना हुआ। वह भव का कारण विकल्प है। आहाहा!

भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प-कथनों से बस होओ, बस होओ। उस विकल्प से अब लाभ होगा और विकल्प आवे ठीक, यह बस होओ। विकल्प है, वह बन्ध का कारण, भव का कारण है। आहाहा! ऐसा सुनना कठिन पड़ जाता है। बाहर से अभी चौबीस घण्टे में दो घण्टे निवृत्ति में निकालना हो, वह भी निकाल नहीं सकता। उसमें ऐसी एकदम विकल्परहित की पूरी वस्तु। आहाहा! जिसमें मैं धर्म का धर्मी हूँ और धर्म का यह विकल्प है, वह भी जिसमें नहीं। आहाहा! **भव के करनेवाले ऐसे इन विकल्प-कथनों से...** अलम् अलम्। अब **बस होओ, बस होओ।** कहते हैं। हमारे अब विकल्प से काम नहीं है। आहाहा! वह चाहे तो शुभराग हो, भगवान की भक्ति का, स्मरण का भाव बस होओ अब, उसका हमारे काम नहीं। आहाहा! पक्षवाले को तो कठिन पड़ जाए ऐसा है। सम्प्रदाय के पक्ष का आग्रह बँध गया हो, वह क्रियाकाण्ड में धर्म होता है। यहाँ कहे क्रियाकाण्ड और वह सब तेरा जहर है। आहाहा! अब बस होओ। उससे पूरा पड़ो, अब पूरा पड़ो। बस हो जाओ। मेरा नाथ अन्दर विकल्परहित है, उसकी अन्दर में स्थिरता, वही मुझे शान्ति का कारण है। आहाहा!

विकल्प-कथनों से बस होओ, बस होओ। जो अखण्डानन्दस्वरूप है... और जो अखण्डानन्दस्वरूप है। आहाहा! आनन्द तो है परन्तु द्रव्य में आनन्द अखण्ड है। एकरूप अखण्ड आनन्द अन्दर है। चैतन्य में अखण्ड आनन्द एकरूप आनन्द है। सर्वांग आनन्द है। असंख्य प्रदेश में सर्वांग अतीन्द्रिय आनन्द भरा पड़ा है। आहाहा! ऐसा अखण्डानन्द प्रभु! **वह (यह आत्मा)...** विकल्प वह आत्मा नहीं। शुभराग, दया, दान, व्रत, भक्ति, वह सब राग, वह आत्मा नहीं। आहाहा!

समस्त नयराशि का अविषय है;... ठीक। विकल्प तो भव का कारण है, परन्तु नय, जो ज्ञान के प्रकार, उससे जो नय-निश्चय और व्यवहार, उसका जो विकल्प, उसका

वह विषय नहीं है। नय के विकल्प का विषय वह आत्मा नहीं है। ध्येय नहीं है। उससे वह पकड़ में आये, ऐसा नहीं है। आहाहा! निश्चयनय स्वभाव के आश्रय से पकड़ में आता है, ऐसा है। परन्तु निश्चयनय का जो विकल्प, जो राग है, उससे वह पकड़ में आये, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो कहाँ की बात चलती है?

प्रभु! तू कितना है? तेरी महत्ता का पार नहीं, प्रभु! तुझे हीन बताना, वह कलंक है। आहाहा! उसे हीन बतलाना, अल्प बतलाना, कम बतलाना, वह सब कलंक है। वह अखण्डानन्द प्रभु अन्दर वस्तु है न? पदार्थ है न? अस्तिवाला तत्त्व अरूपी चैतन्य भगवान है न? वह अखण्डानन्द आनन्द से भरपूर भगवान पूर्ण है। आहाहा! वह विपरीत तो नहीं, परन्तु उसमें अपूर्णता नहीं। आहाहा! अखण्डानन्द का नाथ भगवान आत्मा है, उसमें दया, दान की विपरीतता तो नहीं परन्तु उसमें अखण्डानन्द में... आहाहा! भेद भी नहीं। एकरूप है।

वह (यह आत्मा) समस्त नयराशि का अविषय है;... समस्त नयराशि। यहाँ तो विकल्पवाला लिया है। नय दो प्रकार के हैं न? विकल्पवाले और निर्विकल्प। प्रमाण भी विकल्पवाला और निर्विकल्प। आहाहा! **समस्त नयराशि...** ज्ञान के अंशों से जितने नय हैं, व्यवहार और निश्चय के विकल्प, उन सबका अविषय है। उनसे वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। उसका वह विषय नहीं है। लोग नहीं कहते? कि भाई! यह तेरा विषय नहीं है। कुम्हार को ऐसा कहते हैं कि जवाहरात का तेरा विषय नहीं है, बापू! जवाहरात का विषय तेरा नहीं है, भाई! तू सुनने बैठा परन्तु यह विषय दूसरे प्रकार का है। तू घड़ा गढ़। कुम्हार तो घड़ा गढ़े या तो वह टीपडा-टीपडा किया करे। उसका कहीं जवाहरात का विषय है? आहाहा! इसी प्रकार अनादि का नयराशि का विषय नहीं है। आहाहा! वह तो नय से पार-विकल्प के नय से पार है। ऐसा भगवान अविषय है। अविषय समझ में आया? उसके ध्येय में, विषय में वह आ नहीं सकता। नय के विकल्प में वह आ नहीं सकता। भगवान आत्मा निश्चयनय के और व्यवहारनय के विकल्प में विषय उसका नहीं हो सकता। उससे वह ज्ञात नहीं हो सकता। उससे उसका अनुभव नहीं हो सकता, उसकी सत्ता का पता नय के विकल्प से नहीं मिलता। आहाहा! व्यवहार—निश्चय आदि नय बहुत प्रकार से हैं, परन्तु उन सबसे भगवान का पता मिले, ऐसा नहीं है। क्योंकि वे नय के विकल्प वस्तु

में नहीं हैं। जिसमें नहीं, उससे मिले, वह वस्तु नहीं हो सकती। आहाहा! भारी कठिन काम। सम्प्रदाय में बात सुनी हो और यह बात सुने, उसे पूरब-पश्चिम लगेगा। यह किस प्रकार की बात! आहाहा! क्या है यह तो? यह तो कोई अध्धर से लाये होंगे?

यह तो भगवान की वाणी है, प्रभु! भगवान तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव जिनेश्वरदेव की यह वाणी है। यह कोई पक्ष और सम्प्रदाय की वाणी नहीं है। आहाहा! कहते हैं कि **वह (यह आत्मा) समस्त नयराशि का अविषय है; इसलिए यह कोई (अवर्णनीय)...** है। इसलिए वह कोई अवर्णनीय है। उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वर्णन करने जाए तो विकल्प उत्पन्न होते हैं। आहाहा! अखण्डानन्द ऐसा है, परन्तु वह तो विकल्प आया। उसका वर्णन किया वह विकल्प से वर्णन (हुआ)। आहाहा! वह अवर्णनीय है।

आत्मा द्वैत या अद्वैतरूप नहीं है... आहाहा! श्लोक बहुत उत्कृष्ट किये हैं। यह द्वैत का विकल्प द्रव्य और पर्याय। आत्मा द्रव्य भी है और पर्याय भी है। ऐसे दो का विकल्प भी उसका विषय नहीं है। तथा अद्वैत द्रव्य एक है, उसका भी विकल्प का विषय नहीं है। आहाहा! **(अर्थात् द्वैत-अद्वैत के विकल्पों से पर है)। उसे एक को मैं...** उस एक को- त्रिकाली भगवान एक को... आहाहा! एक स्वरूप विराजमान अनादि-अनन्त नित्य ध्रुव वह तो है। नित्यानन्द प्रभु ध्रुव। सबका भगवान आत्मा नित्यानन्द ध्रुव है। प्रसिद्धि नहीं आयी और पामर की प्रसिद्धि से प्रभु को वहाँ रोक लिया। आहाहा! इज्जत, पैसा, कीर्ति, विकल्प, दया, दान, व्रत, ने घेरा डाला। आहाहा! जिससे वहाँ से हटकर अन्दर जाने का अवकाश नहीं लिया। इसलिए इसका भवभ्रमण मिटा नहीं। आहाहा!

उसे एक को मैं अल्प काल में भवभय का नाश करने के लिये... एक स्वरूपी प्रभु। अनन्त-अनन्त गुणस्वरूप। गुणवाला भी नहीं। गुणवाला, यह भेद पड़ गया। गुणी भगवान और गुणवाला, यह भेद। वह तो गुणमय है। आहाहा! ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अखण्डानन्द, वह सब गुणमय भगवान है। **उसे एक को मैं अल्प काल में भवभय का नाश करने के लिये...** अल्प काल में भव के भय का नाश करने के लिये **सतत वन्दन करता हूँ।** आहाहा! निरन्तर उसे वन्दन करता हूँ, आदर करता हूँ। आहाहा! यह वाणी सुनने को मिलती नहीं। सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, यह करो और वह करो। हम (संवत्) १९८२ के वर्ष में जामनगर रहे थे न, उस लोकाशा के उपाश्रय में;

(वहाँ) अष्टमी और पूर्णिमा को प्रौषध करे। २५-३०-४० लोग आवे। प्रौषध करे तो बस मानो कि ओहोहो! अपने को मानो धर्म हो गया।

मुमुक्षु : पूरे दिन दुकान में नहीं गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुकान में नहीं गये, उसमें क्या भला हुआ? यह अन्दर दुकान है, उसमें तो गया नहीं। इसलिए ताराचन्दभाई को यह प्रश्न उठा था। कहा नहीं? अकेले आये। मैं कहूँ जितना यह शुभाशुभ का क्रियाकाण्ड जो है, वह धर्म नहीं। शुभभाव की आचरण क्रिया, वह धर्म नहीं। तब वे एकान्त में अकेले आये। महाराज! तब यह सब क्या है? यह सब वह होता है। चाहे जैसे हो। देखो! तुम्हारा ज्ञानसागर। मन, वचन, काया की शुभक्रिया से पुण्य बँधता है। शुभक्रिया से पुण्य बँधता है। नामकर्म (बँधता है), उससे धर्म नहीं होता। देखो, तुम्हारे पुनातर ने बनाया है। 'ज्ञानसागर' प्रकाशित किया है न? वह पढ़ा तब पूरा पढ़ा। १९६८ में उसमें से बहुत पढ़कर कण्ठस्थ किया था। १९६८ के वर्ष में। उसमें भेद-प्रभेद भी सब है। आहाहा! वह भेद-प्रभेद रह गया।

अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु! निर्विकल्प, भव के कारणरूप विकल्प से रहित... आहाहा! ऐसे आत्मा को **एक को मैं अल्प काल में...** एक को ही वन्दन करता हूँ। क्यों?—कि **अल्प काल में भवभय का नाश करने के लिये...** अल्प काल में भवभय का नाश। आहाहा! पंचम काल की बात... परन्तु टीका है न? 'अध्यात्मतरंगिणी' में लिखा तीन भव। टीका है। अधिक होवे तो तीन भव होते हैं। ऐसा टीका में है। बताया था न? अध्यात्मतरंगिणी पाठ में संस्कृत टीका में है। ऐसा काल, केवली नहीं, मनःपर्यय नहीं, अवधि नहीं, कोई लब्धि विशेष चमत्कारिक कुछ नहीं। उसमें जो कुछ धर्म पावे, वह तो अल्प काल में ही अब मोक्ष जाएगा। उसे दो-तीन भव के अतिरिक्त नहीं होते, ऐसा लिखा है। (परम) अध्यात्मतरंगिणी, यह (समयसार) कलश के अर्थ किये हैं। यह कलश के ढ़ेर है। एक इस कलश के। वे दूसरे। उस कलश का अर्थ... है इसमें? यह है? यह नहीं? पीछे है। तीन भव लिखे हैं। टीका में है।

जो आत्मा का आराधन करेगा, विकल्प से रहित निर्विकल्प से (आराधन) करेगा, वह यहाँ कहते हैं, उसे अल्प काल में भवभय का नाश होगा। आहाहा! उसे **सतत वन्दन करता हूँ।** निरन्तर उसका आदर करता हूँ। त्रिकाली चीज़ आनन्दकन्द प्रभु का ही मैं

आदर (करता हूँ)। आहाहा! तीन भवनुं संस्कृत में है। लिखा होगा, कहीं दिया नहीं, दिया नहीं होगा। उसमें लिखा है? वह तो इस ओर है। बाहर बताया। यहाँ तो यह काल है, ऐसा कहा न?

एक को मैं अल्प काल में भवभय का नाश करने के लिये... एक भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसका ही मैं भजन करूँ। भक्ति, उसकी भक्ति, वह भक्ति। भगवान की भक्ति, वह शुभराग। आहाहा! होता है। अशुभ से बचने को शुभराग आता है। वहाँ है न? '**अचिरात् शीघ्रम तद्भव तृतीय हवादो अवश्यम**'—पाठ है, देखो! 'अचिरात्' का अर्थ किया है। यह ४८वाँ श्लोक है। '**एको मोक्षपंथा**' उसका अर्थ किया है। 'अचिरात्' अर्थात् क्या? 'अचिरात्', शीघ्रम... अचिरात् का अर्थ किया है ४८ श्लोक है। उसमें अर्थ किया है 'अचिरात्' अल्प काल में जाएगा अर्थात् क्या? 'शीघ्रम...' उसमें है। यहाँ कहते हैं कि अवश्य भवभय का नाश करने के लिये... एक को ही वन्दन करता हूँ। आहाहा! विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)